रामलीला

-डॉ. अवंतिका सिंह

नाटक शताब्दियों से मनुष्य को प्रभावित करने का शक्तिशाली माध्यम रहा है। प्राचीन काल से दृश्य और श्रव्य काव्य की परम्परा में नाटकों का विशिष्ट महत्व है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से काव्य प्रतिमानों का निर्धारण और कई प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तों का सृजन भी हुआ। अनुभूति का आभास, का आस्वादन और दर्शक के हृदय में तात्कालिक प्रभाव को स्थापित करने में नाटकों की अहम भूमिका है। इस दृष्टि से हिन्दी भाषी प्रांतों और हिंदीपन की संस्कृति से लबरेज स्थलों पर लोकानुरंजक नाट्यशैलियों का प्रादुर्भाव समय-समय पर होता रहा है। हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, तमिल, बंगला, कन्नड़ इत्यादि में भी लोकनाट्य शैलियाँ अपने प्रभाव की कहानी कहती रही हैं। इनके क्षेत्र सुनिश्चित तथा विस्तार निकट के जनपदों में लोक-संस्कृति के संवाहक बने हुए हैं। लोकवाही संस्कृति की ये नाट्य-शैलियाँ भाषा, प्रांत, दिशा, धर्म इत्यादि की सीमा को अतिक्रमित करती हुई 'लोक' का एक अनोखा संसार रचती हैं। इस रचाव में सद्भाव, उदारता, धार्मिकता, राष्ट्रप्रेम, साहित्यिक कलाएँ, व्यंग्य, सामाजिक सुधार के प्रयत्न स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। हिन्दी-प्रदेश की नाट्य-शैलियों में उनका स्वरूप अधिक स्पष्टता के साथ दिखायी पड़ता है। भारतीय उपमहाद्वीप में लोकनाट्य शैलियों का स्वतंत्र विकास हुआ है। जैसे जात्रा (बंगाल) अंकियानाट (असम) भवई (गुजरात), तमाशा (महाराष्ट्र), भांडपथर (कश्मीर) चविट्ट कुटियट्टम (केरल) यक्षगान (कर्नाटक) भावत मेल, तेरुकुत्तू (तमिलनाडु), कुचिपुड़ी (आन्ध्र प्रदेश) तथा हिन्दी-प्रदेश में प्रचलित रामलीला, रासलीला, ख्याल, स्वांग, नौटंकी, कीर्तनिया नाट, बिदेसिया, धोबी नृत्य माच, नाचा, रम्मत नकल, फैड़, करियाला, पंडवानी, गवरी, रम्मत आदि पर गायन, वादन, नृत्य, संगीत परलोक परम्पराओं, लोककथाओं और लोकनायकों का व्यापक प्रभाव दिखता। इन लोकनाट्य शैलियों का वर्गीरण डॉ. दशरथ ओझा 'कथा-वस्तु के आधार पर' करते हैं तो डॉ. महेन्द्र भानावत 'शिल्प प्रक्रिया के आधार पर।

हिन्दीप्रदेश या हिन्दीक्षेत्र शब्द का उद्भव व प्रयोग 'हिन्दी जाति' की अवधारणा के सामानांतर हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'हिन्दी जाति' शब्द का प्रयोग बिरादरी या प्रचलित जाति के अर्थ में न करके राष्ट्रीयता के संदर्भ में किया है। अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मगही, बुंदेलखण्डी, राजस्थानी आदि बोलियों के बीच अंतर जनपदीय स्तर पर हिन्दी की प्रमुख भूमिका को देखते हुए उन्होंने 'हिन्दी जाति' की अवधारणा सामने रखी। इस अवधारणा के पीछे उनका एक खास उद्देश्य था। इन बोलियों का प्रयोग करने वाले जनपदीय या क्षेत्रीय पृथकता की भावना से ऊपर उठ कर हिन्दी को अपनी जातीय भाषा के रूप में स्वीकार करें। निराला की साहित्य-साधना (द्वितीय खण्ड) में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं के अपने-अपने प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों को 'जाति' की 'संज्ञा' दी जाती है। वर्ण-व्यवस्था वाली जाति-पाँति से इस 'जाति' का अर्थ बिल्कुल भिन्न है। किसी भाषा को बोलने वाली, उस भाषा क्षेत्र में बसने वाली इकाई का नाम जाति है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, फॉदर कामिल बुल्के तथा राहुल सांकृत्यायन इत्यादि विद्वान् 'हिन्दी प्रदेश' शब्द का प्रयोग पहले ही करते रहे हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा का मत था कि जिस प्रकार भाषा के आधार पर बांग्ला, गुजराती, मराठी आदि जातियों की पहचान बनी है, ठीक उसी प्रकार हिन्दी-प्रदेश की जनता भी जनपदीय बोलियों के आधार पर पहचाने जाने के बजाय एक हिन्दी भाषी जाति के रूप में पहचानी जाये। हिन्दी-प्रदेश या हिन्दी-क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर-प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश सम्मिलित हैं। यहाँ लोकनाट्य शैलियों की अत्यन्त समृद्ध परम्परा मिलती है। रामलीला नाट्यशैली उसमें अत्यंत महत्वपूर्ण है। रामचरित का अभिनय ही रामलीला है। राम के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रसंगों का पारम्परिक ढंग से मंचन रामलीला की प्रमुख विशेषता है। उल्लेखनीय है कि राम, सीता और दशरथ का नामोल्लेख ऋग्वेद की ऋचाओं में भी प्राप्त होता है। 19 सम्भवतः लोक में रामकथा की शुरुआत के साथ ही रामचरित का अभिनय भी अस्तित्व में आया होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि राम के जीवन काल में ही रामचरित का अभिनय उनके पुत्रों द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा था। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों जैसे उत्तर रामचरितम्, हरिवंश पुराण, हनुमन्नाटक, जैन काव्य आदि में इस लोकनाट्य शैली का उल्लेख मिलता है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित अनेक लोकनाट्य शैलियों में प्रमुख व लोकप्रिय नाट्यशैली के रूप में रामलीला की उपस्थिति इसके महत्व को प्रतिपादित करती है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचना' श्रीरामचरितमानस' ने रामलीला व रामकथा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। पंजाबवासी और गो. तुलसीदास के मित्र मेघा भगत के प्रयास से रामलीला का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। अयोध्या और काशी में रामलीला का प्रचलन तेजी से बढ़ा। रामलीला के इस विकास में रामकथा के महत्व को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है।

भागवत धर्म में प्रचलित अनेक कथाएँ विभिन्न लोकनाट्य शैलियों का हिस्सा बनीं। ये नाटक, धर्म व संस्कृति के अस्तित्व को संरक्षित करने तथा भक्ति की परम्परा को प्रबल बनाने के सशक्त माध्यम थे। प्रारंभ में रामलीला क्षेत्र सीमित था। कालांतर में इसका विस्तार सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं में दिखने लगा। गोस्वामी तुलसीदास और उनके ग्रंथ 'श्रीरामचरितमानस' की ख्याति दक्षिण भारत तक फैल चुकी थी। इसकी पुष्टि कर्नाटक के अत्यन्त प्राचीन लोकनाट्य दोड्डटट्टा के 'रामकथे' से होती है। इसका उल्लेख सम्मान के साथ हुआ है। इनमें चौपाईयाँ और संवादों को भी सम्मिलित किया गया है।

रामलीला की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। उसका मंचन भी कई रूपों में होता है। संवादात्मक, काव्यात्मक, पुतुल नाट्य आदि। 'रामलीला' की झाँकी, दृश्यों और शोभा यात्रा से युक्त अभिनटनपरक पद्धति में मानस-पाठ होता रहता है और अभिनेता बीच-बीच में अभिनटन करते रहते हैं। इनके संवाद संक्षिप्त होते हैं। कुछ दृश्यों के प्रस्तुतीकरण में दृश्यात्मक रूप से सजे हुए यानों (विमानो) पर जुलूस निकाला जाता है। अभिनय रामकथामय रामलीला की प्राणशक्ति है। रामकथा के विभिन्न प्रसंगों की संवाद पुस्तिका व्यास के हाथ में रहती है। पुस्तिका के आधार पर पात्र संवाद बोलते हैं और कथा आगे बढ़ती रहती है। बीच-बीच में मानस-

पाठ रामलीला का अनिवार्य अंग बना रहता है। संवाद पुस्तिका के निर्माण में राम-साहित्य का कुछ महत्वपूर्ण अंश सम्मिलित किया जाता है। ये संवाद नाटकीय होते हैं। लगभग समस्त उत्तर भारत में रामलीला का मंचन इसी पद्धति पर होने लगा था। व्यास और रामायणी दल इसका अभिन्न अंग हैं। विभिन्न आकार-प्रकार के मुखौटों का प्रचलन भी रामलीला में रूचि उत्पन्न करता है। मुकुट और मुखौटा पूजन रामलीला के पूर्वरंग का हिस्सा है। 'रामलीला के प्रारंभ में पूर्वरंग की निश्चित विधि का पालन किया जाता है जिसमें स्थान भेद के कारण प्रकार-भेद भी देखा जाता है। कहीं यह लीला भगवान के मुकुटों के पूजन से आरम्भ होती है और कहीं इसी प्रकार के अन्य कर्मकांडों से। रामलीला का मंच सादगी भरा होता है। कोई तड़क-भड़क नहीं चाकचिक्य नहीं। लीला प्रसंग मन्दिरों में कुछ जलाशय के आस-पास तथा कुछ मैदानों में मंच तैयार किये जाते हैं। मैदानों में बनने वाले मंच कहीं छोटे तो कहीं अत्यधिक बड़े बनाये जाते हैं।' उत्तर प्रदेश और दिल्ली में रामलीला का जो प्रदर्शन होता है, उसकी रंगस्थली अधिक विशाल होती है, प्रेक्षकों की संख्या भी उसी अनुपात से अधिक होती है। उत्तर प्रदेश में रामलीला के लिए लगभग पाँच सौ गज की आयताकार भूमि के चारों ओर खेमे लगा दिये जाते हैं, इसे बाड़ा कहते हैं। बाड़े के अन्दर चित्रकूट, लंका, पंचवटी इत्यादि के लिए अलग-अलग स्थान नियत होते हैं। इस तरह नाट्य गति और व्यापार का एक विविध और प्रभावकारी चित्र दर्शक के सामने आ जाता है। दिल्ली की परम्परागत रामलीला में छह फुट से ऊँचा मंच बनाया जाता है। मंच लगभग सौ गज लम्बे और तीस गज चौड़े पथ के रूप में होता है। बल्लियों पर तख्त आदि बाँधकर इसका निर्माण किया जाता है। एक सिरे पर लंका और दूसरे सिरे पर चित्रकूट। प्रेक्षक लम्बाई के दोनों ओर खड़े या बैठे रहते हैं। रामलीला का क्षेत्र विस्तार बहुत तेजी से हुआ। उत्तर प्रदेश की रामलीलाओं में शोभायात्रा का सर्वाधिक महत्व है। कुछ स्थानों पर पात्रों को 'स्वरूप' कहा जाता है। पात्रों का श्रृंगार साधु-संतों द्वारा सम्पन्न होता है। विश्व प्रसिद्ध रामलीला रामनगर (बनारस) की होती है। एक माह पूर्व से ही लोग उसके संवाद को याद करते हैं तथा मंचन की बारीकियों की समझ विकसित करते हैं। यह परंपरा प्रायः दो सौ वर्षों से चल रही है। आज भी वहाँ आधुनिक रोशनी (बिजली) का प्रयोग वर्जित है। अत्याधुनिक युग में अपार भीड़ का उमड़ना रामलीला के महत्व को प्रदर्शित करता है। श्रृंगार पारम्परिक रूप से होता है- काजल, गेरू, मुर्दाशंखी तथा विभिन्न प्रकार के फूलों से श्रृंगार किया जाता है। कुछ स्थानों की लीला पर आधुनिकता का प्रभाव बढ़ा है। लोककथाएँ बच सकती हैं। इनका सुरक्षित रहना संस्कृति को बचाना है। इन सभी लोकनाट्य शैलियों का विशिष्ट महत्व है। इनका प्रभाव लोकमानस को प्रभावित करता है।

सन्दर्भ

1. निराला की साहित्य साधना, भाग-2, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.68

2. हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास डॉ. दशरथ ओझा, पृ.31

3. इन्दुजा अवस्थी का एक लेख रामनाट्य दक्षिण में हिन्दुस्तान, 11 अक्टूबर 1981

4. हिन्दी रंगमंच की लोकधारा जावेद अख्तर खाँ, पृ.१०

5. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच, कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ. 141

6. परम्पराशील नाट्य श्री जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.64

-डॉ. अवंतिका सिंह

सहायक आचार्य,

हिन्दी विभाग, इन्द्रप्रस्थ, महाविद्यालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली